RESEARCH INQUIRY
(An International Peer Reviewed Multidisciplinary Referred Research Journal)
Impact Factor :
ISSN

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में महिला सशक्तिकरण

पुष्पा कुशवाहा
शोधार्थिनी, समाजशास्त्र विभाग, प्रो०राजेन्द्र सिंह(रज्जू भय्या) विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ० ज्योति गुप्तृ
असिस्टेंट प्रोफेसर(समाजशास्त्र), मदन मोहन मालवीय पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज,कालाकांकर,प्रतापगढ़ (उ.प्र.)

सारांश : सशक्तिकरण का मूल आशय व्यक्ति को इतना सक्षम और आत्मनिर्भर बनाना है कि वह अपने जीवन से संबंधित महत्वपूर्ण निर्णय स्वयं लेने में समर्थ हो सके। महिला सशक्तिकरण का उद्देश्य महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक तथा राजनीतिक स्थिति को सुदृढ़ करना है, ताकि उन्हें रोजगार, शिक्षा और आर्थिक प्रगति के समान अवसर प्राप्त हों। इससे महिलाएँ आत्मनिर्भर बनने के साथ–साथ सामाजिक जीवन में स्वतंत्र रूप से भागीदारी कर सकती हैं और अपनी क्षमताओं एवं आकांक्षाओं को साकार करने की दिशा में आगे बढ़ सकती हैं। भारतीय समाज के ऐतिहासिक विकास पर दृष्टि डालने पर स्पष्ट होता है कि लंबे समय तक महिलाओं को विभिन्न प्रकार की सामाजिक असमानताओं और भेदभाव का सामना करना पड़ा। पुरुषप्रधान सामाजिक व्यवस्था के कारण महिलाओं की स्वतंत्रता एवं निर्णय लेने की क्षमता सीमित रही। भारतीय समाज में सती प्रथा, पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा, बाल विवाह, बाल मजदूरी तथा लैंगिक हिंसा जैसी अनेक कुरीतियों ने महिलाओं के विकास में बाधाएँ उत्पन्न कीं। यद्यपि समय के साथ इन कुप्रथाओं के विरुद्ध सामाजिक एवं कानूनी स्तर पर प्रयास किए गए हैं, फिर भी इनके कुछ रूप आज भी समाज में दिखाई देते हैं। महिलाओं को सामाजिक एवं आर्थिक रूप से मजबूत बनाने के लिए भारत सरकार तथा विभिन्न संस्थाओं द्वारा अनेक योजनाएँ और कार्यक्रम संचालित किए जा रहे हैं। महिला एवं बाल विकास मंत्रालय तथा केंद्र सरकार की ओर से बेटी बचाओ–बेटी पढ़ाओ, महिला हेल्पलाइन, उज्ज्वला योजना, सुकन्या समृद्धि योजना, महिला शक्ति केंद्र तथा प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना जैसी पहलों के माध्यम से महिलाओं की शिक्षा, सुरक्षा, कौशल–विकास और आर्थिक आत्मनिर्भरता को बढ़ावा दिया जा रहा है। इन योजनाओं का उद्देश्य महिलाओं को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करने के साथ–साथ उन्हें रोजगार एवं स्वरोजगार के अवसर उपलब्ध कराना भी है। देश के विभिन्न राज्यों में भी महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति को बेहतर बनाने के लिए अनेक योजनाएँ संचालित की जा रही हैं। इन प्रयासों से महिलाओं में आत्मविश्वास, निर्णय लेने की क्षमता, आर्थिक स्वतंत्रता तथा सामाजिक सहभागिता को बढ़ावा मिल रहा है। अतः महिला सशक्तिकरण केवल महिलाओं के व्यक्तिगत विकास तक सीमित विषय नहीं है, बल्कि यह समानता, सामाजिक न्याय और समावेशी विकास की आधारशिला है। प्रस्तुत अध्ययन में महिला सशक्तिकरण की अवधारणा, आवश्यकता, विभिन्न आयामों तथा इसके लिए संचालित योजनाओं का समग्र अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।
प्रमुख शब्द : आर्थिक सशक्तिकरण, राजनैतिक, आत्मसम्मान एवं आत्मविश्वास, मानसिकता

भूमिका

मध्य काल में भारत–वर्ष में मुगल सल्तनत के विस्तार के साथ–साथ, भारतीय समाज व नारी की स्थिति बिगड़ती गई एवं नारी के सामने एक के बाद एक समस्यायें पैदा होती रहीं।[1] मुगल काल वह काल था, जब भारतीय नारी ने अपने सतीत्व के रक्षार्थ अपने प्राणों की आहुति देने का कार्य किया। मध्यकाल में भारतीय नारी का जीवन संकटग्रस्त था। शिक्षा लगभग समाप्त हो गई थी। इस मध्य काल में भी अपनी विद्वता, वीरता, लगन से अपना, अपने परिवार का अपने समाज व देश का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखने वाली रानी दुर्गावती, अहिल्याबाई, पद्मिनी, जीजाबाई आदि युगों–युगों तक प्रेरणा देती रहेंगी।[2] नैतिकता, सदाचरण व ब्रह्मचर्य पालन में भारतीय पुरूषों की अपेक्षा श्रेष्ठतम उदाहरण बार–बार पेश करने वाली भारतीय महिलाओं ने पुरातन काल, मध्य काल में ही नहीं वरन् ब्रितानिया हुकूमत के समय भी भारत की जंग–ए–आजादी में अपनी सक्रिय व अविस्मरणीय भूमिका निभाई है। राजा राम

मोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गांधी ने भारतीय नारी की दशा को समझते हुए, नारी शिक्षा व अन्य क्रान्तिकारी सुधारों को प्रचारित–प्रसारित करने व लागू करवाने का महानतम् कार्य किया। भारत–पाक विभाजन के समय भी सतीत्व के रक्षार्थ, अपने नश्वर शरीर का त्याग करने वाली भारतीय महिलाओं की बलिदान की उच्च परम्परा के कारण ही भारतीय नारी सदैव सम्मान की पात्र रही है।[3] आज भारतीय महिलायें शिक्षा व सामाजिक–राजनैतिक क्षेत्रों में अगर अग्रणी स्थानों पर हैं तो वह भारत के इन्हीं महापुरूषों की सोच व प्रयासों का परिणाम है।

महिला सशक्तिकरण वर्तमान सदी का एक ज्वलंत मुद्दा है। वैश्विक स्तर पर महिला सशक्तिकरण की शुरूआत 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही प्रारम्भ हो चुका था, उस काल में नारी की के समान सम्मान एवं अधिकार की माँग इस सदी की बुनियादी मान्यताएं थी, फ्रांसीसी क्रान्ति और अमेरिकी क्रान्ति ने भी स्वतंत्रा समानता एवं बन्धुत्व के सूत्र वाक्य को लेकर नारी सशक्तिकरण का आन्दोलन मजबूत किया। इंग्लैण्ड की मेरी वोलस्टोनक्राफ्ट ने 1793 में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'विन्डीकेशन आफ द राइस आफ वुमेन' में महिला सशक्तिकरण के पक्ष में प्रथम उद्बोध दिया। वोलस्टोनक्राफ्ट ने अपनी इस पुस्तक में स्त्रियों को कानूनी, राजनैतिक, और शैक्षणिक स्तर पर समानता की बात की। 1869 में जॉन स्टुअर्ट मिल ने अपनी पुस्तक 'सब्जेक्शन आफ वुमेन' (स्त्रियों की पराधीनता) में मिल ने पुरुष वर्चश्ववाद की स्वीकार्यता के आधार के तौर पर काम करने वाली सभी प्रस्तरीकृत मान्यताओं, संस्कारों, रूढ़ियों को और स्थापित कानूनों को तर्कों के जरिये प्रश्न चिन्हों के कटघरे में खड़ा किया। 1970 में उत्तरी एवं मध्य अमेरिका यूरोप व आस्ट्रेलिया में महिला सशक्तिकरण का पुट देखने को मिलता है। लगभग एक दशक तक महिला सशक्तिकरण का यह प्रयास जारी रहा। इस काल में समान वेतन, समान शिक्षा व्यवसाय और नौकरी में समरूपता स्वतंत्र पहचान सेवा का समुचित अधिकार तथा अनिति हिंसा व यौन शोषण से मुक्ति इसकी मूल मान्यताएं बतायी जा सकती हैं। एक क्रान्तिकारी नारीवादी लेखिका सीमान बी बोवियर ने अपनी पुस्तक 'सेकेण्ड सेक्स' (1949) में महिला सशक्तिकरण के लिए नारी को पुरुषों के विरोध में उठ खड़े होने का आह्वाहन किया है।

महिलाओं के प्रति नई सोच

पिछले कई दशक से हमारे समाज में महिलाओं को पुरूषों के बराबर का दर्जा देने के सम्बन्ध में एक निरर्थक सी बहस चल रही हैं। जिसे कभी महिला वर्ष मना कर तो कभी विभिन्न संगठनों द्वारा नारी मुक्ति मंच बनाकर पुनर्जीवित करने का प्रयास किया जाता रहा है।[4] समय समय पर विभिन्न राजनैतिक, सामाजिक और यहाँ तक की धार्मिक संगठन भी अपने विवादास्पद बयानों के द्वारा खुद को लाइम लाईट में बनाए रखने के लोभ से कुछ को नही बचा पाते, पर इस आन्दोलन के खोखलेपन से कोई भी अनभिज्ञ नहीं है शायद तभी यह हर साल किसी न किसी विवादास्पद बयान के बाद कुछ दिन के लिए ये मुद्दा गरमा जाता है और फिर एक आध हफ्ते सुर्खियों में रहकर अपनी शीत निद्रा में चला जाता है। हद तो तब हुई जब स्वतंत्र भारत की सबसे कमजोर सरकार ने बहुत ही साधारण ढ़ग से संवाद में महिला विधेयक पेश करने की कथित हिम्मत दिखाई।

समाज और बदलती मानसिकता

आज कल समाज में एक मानसिकता सी चल पड़ी है कि नारी और पुरूष को बराबरी का अधिकार मिलना चाहिए। अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए सभी राजनैतिक पार्टी के नेता लोग भी जुबानी जमा खर्च करने में पीछे नहीं रहते यह बात अलग है कि किसी को महिला वोटों की चिंता है तो किसी को चूल्हे–चौके की लेकिन दिल से न तो कोई इस बात को मानता है और ना ही प्रत्यक्ष समर्थन करने को तैयार होगा की महिलाओं को समानता का अधिकार मिले। यही कारण है कि इतने साल गुजर जाने के बाद भी महिला सशक्तिकरण, तथाकथित नारी मुक्ति आन्दोलन और अब महिला विधेयक की गाड़ी पंचर पड़ी है और आगे वक्त बताएगा कि यह खटारा आगे भी जायेगी भी या अभी कितने साल और इस राजनैतिक चक्रवात में फँसी रहेगी पर इतना तो है कि नारी भक्त राजनीतिज्ञ न तो इस आग को जलने देंगे और न ही बुझने देंगे परन्तु उनकी स्वार्थ सिद्धि इस आग के जलने या बुझने में नहीं केवल सुलगते रहने में है क्योंकि इसी सुलगती आग में ही राजनैतिक रोटी करारी सिकती है। दयनीय स्थिति तो समाज के उस वर्ग (केवल नारियाँ) की है जिसका उपयोग इस आग को सुलगाए रखने के लिए

किया जा रहा है। यहाँ सबसे बड़ी बिडम्बना यह है कि महिला समाज का एक प्रमुख वर्ग जिससे अपेक्षा की जाती है कि वो महिला समाज का नेतृत्व करे खुद अपनी रोटी सेंकने में व्यस्त है। वह वर्ग विशेष करे भी क्या? यह हकीकत तो पूरा नेतृत्व जानता है कि मिलना तो कुछ है नहीं तो क्यों ना अपनी रोटियाँ ही सेक ली जाये? वास्तव में दयनीय स्थिती तो तब आती है जब 50–50 रूपए के लालच में औरतें महिला सशक्तीकरण, तथाकथित नारी मुक्ती आन्दोलन और महिला विधेयक की मर्ग मारीचिका के समर्थन में सारे दिन धूप में नारे लगाते हुए इस झूठ को जीती हैं कि अब वो पुरूष के बराबर होने योग्य हो गयी हैं। इनसे भी अधिक दया की पात्र वे हैं जो अपनी कार से, घर की बालकनी से या टेलीविजन के पर्दे पर ही इस आन्दोलन को देख कर खुश हो जाती हैं।

नारी सदा से पुरूष की आश्रिता रही है। पुरूष का आदि काल से यह कर्तव्य रहा है कि वो उसका पालन–पोषण करे और उसकी रक्षा करें। उस पर किसी भी प्रकार का अत्याचार या अन्याय न तो पुरूष श्रेष्ठ को शोभा ही देता है और ना ही किसी भी परिस्थिति में स्वीकार्य हो सकता है।[5] संकट के समय सदा ही नारी, चाहे वो सीता हो या द्रोपदी या सूर्पनखा या फिर आज की कोई भी तथा कथित आधुनिक पुरूष से ही रक्षा की अपेक्षा करती है। खुद को इस भ्रम में रखने के लिए कि वो भी पुरूष से कम नही है। कभी–कभी वो भी पुरूष के साथ मैदान में कूद तो पड़ती है पर जब वास्तविकता से सामना होता है तो वो भी पुरूष सत्ता को स्वीकार कर या तो समर्पण कर देती है या सहयोग की याचना करने लगती है जब उनकी ही परिस्थितियों में पुरूष खुद लड़ता है और अपनी बुद्धि, विवेक और बल से विजय भी पाता है।[6]

यहाँ नारी भक्त रानी लक्ष्मी बाई, इन्दिरा गाँधी और भी इसी तरह की सैंकड़ो औरतों का उदाहरण देने में पीछे नही रहेगें। यहाँ वे भूल जाते हैं या नारी भक्ति में याद ही नही करना चाहते कि अपवाद हर जगह होते हैं। समाज में जो काम केवल एक या दो नारियाँ ही कर पाती हैं उनको तो नारीभक्तों ने महामंडित कर दिया पर उससे भी हीन परिस्थितियों में कोई पुरूष वो ही काम करता है तो ''ये तो उसका फर्ज है'' कहकर पल्ला झाढ़ लेते हैं क्यों? यहाँ समानता वाला उनका मापदण्ड कहाँ चला जाता है? वैसे यहाँ समानता वाली बात है भी नही यह बिल्कुल सत्य है कि पुरूष का तो ''यह फर्ज है ही'' पर यदि कोई नारी भी 'इसे' कर ले तो उसे शाबाशी तो मिलनी ही चाहिए उसके उत्साहवर्धन के लिए प्रशंसा और शाबाशी जरूरी है। पर इसका नारी द्वारा यह मतलब निकालना की इतने मात्र से ही वो पुरूष के बराबर हो गई उनके मानसिक दिवालियापन का परिचायक नही तो क्या है?

सामाजिक व्यवस्थाएं

आदि काल से ही हमारे पूर्वजों ने पूरी तरह से सोच विचार कर ही एक पुरूष प्रधान समाज की रचना की है। उसकी दूरदर्शिता के कारण ही आज भी हमारी सामाजिक व्यवस्थाएं उन परम्पराओं का पालन करते हुए फल फूल रही है। क्या कभी आप ने कल्पना की है कि अगर हजारों साल पहले इस बराबरी का मूर्खतापूर्ण विचार हमारे पूर्वजों को आ जाता तो आज समाज की क्या स्थिति होती, नही सोचा तो अब सोच कर देखे, दिमाग का फालूदा बन जायेगा और वह काम करना बंद कर देगा।[7] फिर भी अगर और सोचने का प्रयास किया तो कोई नतीजा नही निकलेगा और अगर निकला भी तो कितना विनाशकारी होगा यह लिख पाना तो मुश्किल है आप खुद ही सोचें।

पहले हमारे समाज को महिलाओं की चिंता नही थी या उनके प्रति प्रेम या सम्मान में कोई कमी थी, ऐसा नही है। जितनी चिंता आज महिलाओं की होती है। शायद उतनी ही चिंता हमारे प्राचीन समाज को थी। शायद इसी सोच के चलते महिलाओं की सुरक्षा के लिए बाल विवाह तथा सती प्रथा का विकास हुआ था। बचपन से ही नारी की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए ही उनकी बागडोर पुरूष को सौंप दी जाती थी तथा पति की मृत्यु के बाद उसे इस कदर निराश्रित मान लिया जाता था कि अब उसका कोई रक्षक नही है अतः उसे मर जाना चाहिए। अब यह सोच निर्विवाद रूप से मूर्खता की परिचायक मानी जाती है पर उस समय अगर लोगों की मानसिकता का अध्ययन किया जाये तो यह स्पष्ट हो जाता है कि इन सब पाशविक और मूर्खता पूर्ण सोच के पीछे पुरूष वर्ग की कोई दंडात्मक या प्रतिशोधात्मक भावना नही रही होगी अपितु उसने इस प्रकार के नियम नारी की सुरक्षा को दृष्टिगत रख

कर ही किया होगा।[8] प्राचीन समय में पर्दा प्रथा का चलन भी नारी की सुरक्षा को सर्वोपरि मान कर किया गया होगा। हमारे शास्त्रों में भी नारी को लक्ष्मी के स्वरूप में प्रतिष्ठा दी गई है और यह निर्विवाद सत्य है कि लक्ष्मी की सुरक्षा का दायित्व सदा से पुरूष पर रहा है। समाज में प्रतिष्ठा और विवाद के मुख्य मानदंड जर, (धन) जमीन और नारी ही है। यह तीनों ही स्वयं अपनी सुरक्षा करने में सक्षम नही होते अतः इनकी सुरक्षा का पूरा दायित्व सदा से ही मर्द का रहा है। इनसे कभी भी समाज ने यह अपेक्षा नही की कि वे अपनी रक्षा खुद करें।

हमारे समाज का एक सर्वमान्य नियम है कि नारी को पुरूष के बराबर में नही उसके पीछे चलना है इस नियम का सख्ती से पालन करने और करवाने में भी नारी ही प्रमुख भूमिका निभाती है। इस नियम को तोड़ने पर भी सबसे तीखी प्रतिक्रिया भी समाज के इसी वर्ग से ही आती है क्योंकि हजारों वर्षो के अनुभव ने आज नारी को इतना समझदार बना दिया है कि अब खुद नारी को उसकी इस सोच से असंभव सा लगता है कि वो कभी पुरूष की बराबरी कर सकेगी।

महिला दिवस और महिलाएं

अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस की धूम पूरे विश्व में ब्लॉग्स पर, पत्र–पत्रिकाओं में, अखबारों में और कुछ महिला संगठनों के सौजन्य से मंच बना कर मचाई जाती है। हम सब लिखते हैं–उनकी समस्याओं पर, उनके शोषण पर और अधिकारों पर विचारों का आदान प्रदान किया जाता रहा है। इस दिवस से कितने प्रतिशत महिलायें परिचित हैं कभी हमने इस बारे में सोचा है–हाँ सोचा भी है लेकिन फिर भी हम इस बारे में इतना ही जान पाए कि सिर्फ और सिर्फ 30–40 प्रतिशत महिलायें ही इस दिवस के बारे में जानकारी रखती हैं।[9]

हम आज के दिन अपने समर्थ और सक्षम होने की बात करते हैं और औरों के लिए ऐसा हो जाने की बात करते हैं लेकिन इस विषय में अगर कुछ महिला संगठन आगे आते हैं तो तब6 किसी महिला के ऊपर ऐसे अत्याचार की जानकारी होती है जो सुर्खियों में आकर पूरे मीडिया में एक चर्चा का विषय बन जाता हैं। वास्तव में जो महिलायें वाकई इस दिन के उद्देश्य का विषय हैं। वे इस दिन के महत्व और इसके बारे में कुछ जानती तक नहीं है। यहाँ तक कि वे अपने शोषण के खिलाफ किसका सहारा लें ये भी नहीं जानती हैं। जो शोषित हैं वे कुछ दिन तक तो राजनैतिक दलों और मीडिया के लिए एक विषय बनी रहती है। लेकिन उसके बाद वे न तो समाज के द्वारा स्वीकार की जाती हैं और न ही उन्हें अपने जीवन–यापन के लिए रास्ता नजर आता है। फिर उनसे सीख लेकर अपने प्रति हो रहे अत्याचार या शोषण के खिलाफ आवाज उठाने की हिम्मत वे नहीं कर पाती हैं। इस दिन को सिर्फ एक दिन मनाने की जरूरत भर नहीं है बल्कि जो हालात हैं उनके चलते हर दिन ऐसा ही होना चाहिए। महिला आयोग के प्रयास एक दिन के लिए नहीं बल्कि जिस मामले को वह संज्ञान में लेता है उसमें पीड़िता के लिए सामाजिक स्थापना के प्रति भी जिम्मेदार होना चाहिए। इसके लिए ये आयोग सरकार की सहायता से कुछ ऐसा संस्थान खोले जहाँ पर जो महिला जिस स्तर तक शिक्षित हो उसको कुछ काम करने की शिक्षा दी जाए और फिर उसके द्वारा तैयार चीजों को बाजार में लाने की व्यवस्था भी की जाए ताकि वे आत्मनिर्भर हो सकें न कि वे अपने बदनाम होने के बाद भी समाज में स्वतंत्र रूप से जीने के लिए एक हौसला रख सकें और अपने खर्च के लिए किसी का मुँह न ताकें। आयोग इस तरह के कामों के लिए पहल करके बाद में भूल जाता है और पीड़िता फिर से शोषित होने के लिए मजबूर होती है, बाद में वह और निरीह होकर रह जाती है।

आज महिला उद्यमी भी है और वे महिलाओं को रोजगार भी दे रही हैं उनका भी ये प्रयास होना चाहिए कि अपने यहाँ ऐसी महिलाओं को रख कर उनका हित कर सकें। घरेलू उपयोग की चीजों के निर्माण में उनकी सहभागिता निश्चित की जानी चाहिए। मेरी दृष्टि में महिला आयोग का कार्यक्षेत्र शहरों में ही नहीं बल्कि उनको ग्रामीण इलाके में भी अपने प्रतिनिधि नियुक्त करने चाहिए ताकि वाकई जहाँ महिलायें शोषित और कमजोर हैं उनको सही स्थान और न्याय दिलाया जा सके। इस दिन की सार्थकता इसी में है कि उन्हें सक्षम किया जाये जो इसके लिए जरूरतमंद हैं। न्याय उन्हें दिलाया जाए जो इसे प्राप्त करने में अक्षम है।

भारतीय संविधान और महिला अधिकार

आजादी के बाद सन् 1950 से लागू भारत के संविधान के भाग तीन में नागरिकों के मौलिक अधिकारों का उल्लेख किया गया है। मौलिक अधिकारों का एक खास अर्थ है–जिसका विवरण देश के मौलिक कानून में हो, जो जनता की मूलभूत आवश्यकताओं के विषय में हो और जिन्हें देश के मौलिक कानून अर्थात संविधान का बल या संरक्षण प्राप्त हो। भारतीय संविधान समस्त भारतीय जनता के लिए भारतीय जनता द्वारा निर्मित है इसलिए ''संवैधानिक बल प्राप्त'' का अर्थ होता है, भारतीय जनमत का बल प्राप्त होना।[10]

संविधान की नियमावली के पूर्व एक प्रस्तावना लिखी गयी है, जिसमें कहा गया है कि हम भारत के लोग निष्ठापूर्वक प्रण करते है कि हम भारत को एक सार्वभौम, जनतांत्रिक, समाजवादी गणतंत्र बनायेंगे और इसकी समस्त जनता को प्रदान करेंगे–(क) समता (ख) स्वतंत्रता (ग) न्याय अतएव जनता परस्पर समानता, स्वतंत्रता और न्याय कि सुविधा प्रदान करने के लिए संविधान में वचन देती है। भारतीय जनता पारस्परिक समानता का व्यवहार करने के लिए वचनबद्ध है। जिसकी पुष्टि पुनः संविधान के भाग तीन (जिसे मौलिक अधिकार की संज्ञा दी गयी है।) उसमें की गयी है। इस भाग की धारा 14 –18 तक में नागरिकों हेतु समानता और समान व्यवहार लाने की विविध परिस्थितियों का विवरण है।

धारा 14 में वर्णित है कि भारत का प्रत्येक नागरिक कानून की नजर में बराबर होगा। धारा 15 में वर्णित है कि राज्य नागरिकों में धर्म, जाति, लिंग, भाषा, रंग व जन्म के आधार पर विभेद नहीं करेगा और न किसी संस्था को इस आधार पर विभेद करने देगा। लेकिन संविधान निर्माण की अवधि सन् 1947 से 1950 के बीच ही यह महसूस किया गया है कि प्रकृति ने दो दुर्लभ वर्ग भी बनाये हैं–बच्चे और नारी। अतएव उनके समुचित विकास के लिए विशेष सुविधा देने की आवश्यकता है। इसलिए धारा 15 में यह प्रावधान किया गया है–''राज्य महिला और बच्चों के लिए विशेष सुविधा की व्यवस्था करेगा।''[11] उपर्युक्त धारा 15 के अनुसार केन्द्र तथा राज्य की सरकारें बच्चों एवं महिलाओं के सम्यक विकास के लिए विशेष सुविधा की व्यवस्था करने को बाध्य है। हमारे देश के मौलिक कानून के द्वारा देश की सभी सरकारें, संस्थाओं तथा नागरिकों को आदेश दिया गया है कि महिलाओं तथा बच्चों के विरूद्ध अत्याचार को रोके, शोषण करने वालों को दंडित करें। उनके शारीरिक, आर्थिक व सामाजिक विकास के लिए पूरा–पूरा प्रबंध करे। जैसे–

क) मुफ्त अस्पताल और दवा का प्रबंध।
ख) निःशुल्क अध्ययन और प्रशिक्षण का प्रबंध।
ग) महिलाओं के लिए नौकरी, पेशा तथा व्यवसाय में सहायता का प्रबंध।
घ) सामाजिक कुरीतियों पर प्रतिबंध।

संविधान के भाग चार नीति निर्देशक तत्व के रूप में प्रतिष्ठित है। यह केन्द्र तथा राज्यों के लिए भविष्य के कार्यक्रमों को रेखांकित करता है। इसमें धारा 39[12] में यह प्रावधान किया गया है कि महिलाओं को पुरूषों के समान ही जीविकोपार्जन के पर्याप्त अवसर सरकार द्वारा उपलब्ध कराये जायेंगे, समान कार्य के लिए महिलाओं की मजदूरी भी पुरूषों के समान रहेगी। संविधान लागू होने के दस वर्षों के भीतर चौदह वर्षों तक के बच्चों के लिए अनिवार्य और निशुल्क शिक्षा उपलब्ध करवाने की वचनबद्धता भी दुहरायी गयी है। सरकारें इस प्रावधान को व्यवहार में लाती तो भारत की आधी आबादी अब तक निरक्षर नहीं रहती बल्कि सबके सब साक्षर होते। महिलायें पचास वर्षों की आजादी के बाद पुरूष वर्ग की बराबरी में होती। शोषण और उत्पीड़न नहीं झेलतीं, राष्ट्र के विकास में, समाज के विकास में प्रमुख स्तम्भ होती। लेकिन संविधान में दिये गये अधिकारों की प्राप्ति और उसे अमल में लाने के लिए महिलाओं ने भी सक्रियता नही दिखलायी।

निष्कर्ष

भारत सरकार द्वारा वर्ष 2001 को 'महिला सशक्तिकरण वर्ष' के रूप में भले ही मनाया गया हो, सशक्तिकरण तो निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है, जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में चलती रहती है। इस प्रक्रिया की मात्रा, स्वरूप व गुणवत्ता में अन्तर जरूर हो सकता है। यह प्रक्रिया किसी में आत्मविश्वास पैदा करने, सीखने, अपनी शक्ति को बढ़ाने, स्वयं के मनन, चिन्तन एवं अध्ययन द्वारा ज्ञानवर्धन करने,

आत्मसंयम एवं आत्मानुशासन बढ़ाने तथा दूसरों का मार्गदर्शन करने को प्रेरित करती है। इच्छा शक्ति व साहस के विकास के बिना सशक्तिकरण सम्भव नहीं– ऐसी शक्ति जो कि दूसरों को बदल सके, उनके सोच व विचार को बदल सके, जिन्दगी के तरीके को बदल सके। वही व्यक्ति प्रभाव डालेगा, जिसमें ज्ञान की शक्ति हो, क्षमता हो, सामर्थ्य हो, विशेषज्ञता हो, स्पष्टता हो, पारदर्शिता हो और जो सूचनाएं एकत्रित कर दूसरों को अधिक से अधिक लाभ पहुँचा सके, उनका विकास कर सके, तथा स्वयं एक आदर्श उपस्थित कर सके। यहाँ बात महिला सशक्तिकरण की हो रही है, अतः कहना होगा कि पुरुषों की मानसिकता एवं सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था को ऐसे मोड़ना कि वे महिलाओं की सम्मानजनक स्थिति के लिए वातावरण तैयार कर सकें। सशक्तिकरण को नैतिक, धार्मिक, सामाजिक, पारम्परिक, आर्थिक, राजनैतिक, प्रशासनिक, वैधानिक संवैधानिक दृष्टि से देखे जाने के साथ–साथ महिलाओं की शारीरिक क्षमता, बौद्धिक विकास और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाना भी आवश्यक है। सशक्तिकरण को किसी व्यक्ति विशेष की दृष्टि से नहीं अपितु उसकी विभिन्न भूमिकाओं के रूप में देखने की आवश्यकता हैं।

इस प्रकार महिला सशक्तिकरण से तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसमें महिलाओं को पुरुषों के समान वैधानिक, शारीरिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में उनके परिवार, समुदाय, समाज एवं राष्ट्र की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में निर्णय लेने की पूर्ण स्वतन्त्रता हो।

सन्दर्भ

1. वनमाली मनोहर लाल(2005).महिला एक बहुआयामी जीवन, गौरव प्रकाशन, जयपुर, 2005 पृ0 77.
2. थापर रोमिला (2013). भारत का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. देसाई नीरा तथा ऊषा ठक्कर(2009).भारतीय समाज में महिलाएं (अनुवादित सुभी धुसिया), नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, नई दिल्ली, 2009, पृ0 56.
4. रूस्तगी, प्रीत(2003). जेण्डर बायसेस एण्ड डिस्क्रिमिनेशन अगेन्स्ट विमेन–व्हट डू डिफरेन्ट इण्डिकेटर्स ? यूनिफेम, नई दिल्ली, 2003, पृ0 35.
5. सुल्ताना, अमीर तथा मनविन्दर(2005).जेण्डर रिएलिटीज, अभिषेक पब्लिकेशन्स, चण्डीगढ़।
6. करात बृंदा (2008). भारतीय नारी संघर्ष और मुक्ति, ग्रन्थ शिल्पी (इण्डिया) प्राइवेट लिमिटेड, लक्ष्मी नगर, दिल्ली, 2008, पृ0 119–143.
7. सिंह आनन्द, कोडान,विमल तथा नरेन्द्र बिष्ट(2010).पंचायती राज और महिला सशक्तीकरण, कुरूक्षेत्र, प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, लोधी रोड़, नई दिल्ली, जून 2010, पृ0 13.
8. द्विवेदी राकेश(2005). महिला सशक्तिकरणः चुनौतियां एवं रणनीतियां, पूर्वाशा प्रकाशन, भोपाल।
9. ओम प्रकाश(2010). वीमेन इम्पॉवरमेंट थ्रू सेल्फ हेल्प ग्रुप्स (लेख), शारदा अग्रवाल (संपा), आधी आबादी का यथार्थ भारतीय नारी, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2010, पृ0 259–260.
10. कश्यप, सुभाष (2008).हमारा संविधान, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, नई दिल्ली, पृ0124.
11. बसु, दुर्गादास (1994). भारत का संविधान, चतुर्थ संस्करण, दिल्ली, 1994, पृ0 25.
12. मेहता, चेतन सिंह (2004). महिला एवं कानून आशीष पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ0 30

❑❑❑